मगध का उत्कर्ष : हर्यंक, शिशुनाग और नंद वंश का योगदान

डॉ. विश्वनाथ वर्मा
एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
प्राचीन इतिहास, पुरातत्त्व एवं संस्कृति विभाग
हरिश्चंद्र स्नातकोत्तर महाविद्यालय वाराणसी (उ.प्र.)
E-mail : drvn.verma@gmail.com
Website : www.worldwidehistory.com

मगध का उत्कर्ष : हर्यंक, शिशुनाग और नंद वंश का योगदान

मगध महाजनपद प्राचीनकाल से ही राजनीतिक उत्थान, पतन एवं सामाजिक-धार्मिक जागृति का केंद्र-बिंदु रहा है। छठीं शताब्दी ई.पू. के सोलह महाजनपदों में से एक मगध बुद्धकाल में शक्तिशाली व संगठित राजतंत्र था। इसकी राजधानी गिरिव्रज थी। इस राज्य का विस्तार उत्तर में गंगा, पश्चिम में सोन तथा दक्षिण में जगंलाच्छादित पठारी प्रदेक्ष तक था। कालांतर में मगध का उत्तरोत्तर विकास होता गया और भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के विकास की दृष्टि से मगध का इतिहास ही संपूर्ण भारतवर्ष का इतिहास बन गया।

मगध के इतिहास की जानकारी के प्रमुख साधन के रूप में पुराण, सिंहली ग्रंथ दीपवंस, महावंस अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। इसके अलावा भगवतीसूत्र, सुत्तनिपात, चुल्लवग्ग, सुमंगलविलासिनी, जातक ग्रंथों से भी कुछ सूचनाएँ प्राप्त होती हैं।

मगध के उत्कर्ष के कारक

मगध साम्राज्यवाद का उदय और विस्तार प्राक्-मौर्यायुगीन भारतीय राजनीति की एक महत्त्वपूर्ण घटना है। बुद्धकाल में मगध अपने समकालीन सभी महाजनपदों को आत्मसात् कर तीव्रगति से उन्नति के पथ पर अग्रसर होता गया। मगध के इस उत्कर्ष के अनेक कारण थे।

1. **भौगोलिक स्थिति :** मगध के उत्थान में वहाँ की भौगोलिक स्थिति ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। यह राज्य उत्तरी भारत के विशाल तटवर्ती मैदानों के ऊपरी और निचले भाग के मध्य अति सुरक्षित था। पहाड़ों तथा नदियों ने तत्कालीन परिवेश में मगध की सुरक्षा-भित्ति का कार्य किया। गंगा, सोन, गंडक तथा घाघरा नदियों ने इसे सुरक्षा के साथ-साथ यातायात की सुविधा प्रदान किया। इसकी दोनों राजधानियाँ- राजगृह तथा पाटलिपुत्र सामरिक दृष्टिकोण से अत्यंत सुरक्षित भौगोलिक स्थिति में थीं। सात पहाड़ियाँ के बीच स्थित होने के कारण राजगृह तक शत्रुओं का पहुँचना दुष्कर था। चारों ओर से नदियों से घिरी होने के कारण पाटिलपुत्र भी सुरक्षित रही।

2. **प्राकृतिक संसाधन :** प्राकृतिक संसाधनों की दृष्टि से मगध अधिक समृद्ध और सौभाग्यशाली था। मगध के निकटवर्ती जंगलों में पर्याप्त मात्रा में हाथी पाये जाते थे जो सेना के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुए। मगध क्षेत्र में कच्चा लोहा तथा ताँबा जैसे खनिज पदार्थों की बहुलता थी। समीपवर्ती लोहे की खानों से भाँति-भाँति के अस्त्र-शस्त्र बनाकर घने जंगलों को साफ कर कृषि-योग्य भूमि का विस्तार हुआ तथा नये-नये उद्योग-धंधों को प्रोत्साहन मिला। लोहे का समृद्ध भंडार आसानी से उपलब्ध होने के कारण मगध के शासक अपने लिए अच्छे युद्धास्त्र तैयार करवाये जो उनके विरोधियों को सुलभ नहीं थे।

3. **आर्थिक संपन्नता :** मगध की आर्थिक संपन्नता ने भी इसके उत्थान में सहायता पहुँचाई। मगध कोक्षेत्र अत्यंत उपजाऊ था। यहाँ वर्षा अधिक होती थी जिसके कारण कम परिश्रम में भी अधिक उपज होती थी। अतिरिक्त उत्पादन से व्यापार-वाणिज्य को प्रोत्साहन मिला तथा देश आर्थिक दृष्टि से संपन्न होता गया। सिक्कों के प्रचलन, नये उद्योगों की स्थापना और नगरों के विकास से राज्य की आर्थिक संपन्नता में वृद्धि होना स्वाभाविक था। गंगा और सोन नदियों के निकट होने के कारण मगध में आवागमन और व्यापारिक सुविधाएँ बढ़ीं जिससे

मगध का महत्त्व बहुत बढ़ गया।

4. **स्वतंत्र वातावरण :** मगध का वातावरण अन्य राज्यों की अपेक्षा स्वतंत्र था। यह अनेक जातीय एवं सांस्कृतिक धाराओं का मिलन-बिंदु था। यदि एक ओर यह भूमि जरासंध, बिंबिसार, अजातशत्रु जैसे महान् शासकों की जन्मभूमि थी तो दूसरी ओर वैदिक धर्म के प्रतिरोधी जैन तथा बौद्ध धर्म के उदय का भी केंद्र था। मगध का सामाजिक वातावरण भी अन्य राज्यों से भिन्न था। यह 'अनार्यों का देश' माना जाता था। ब्राह्मण संस्कृति द्वारा लगाये गये सामाजिक बंधनों में शिथिलता तथा बौद्ध एवं जैन धर्मों के सार्वभौमिक दृष्टिकोण ने इस क्षेत्र के राजनीतिक दृष्टिकोण को व्यापक बनाया जिससे यह एक शक्तिशाली साम्राज्य का केंद्र बन सका।

5. **योग्य एवं कुशल शासक :** किसी भी राष्ट्र की उन्नति के लिए आवश्यक है कि उसके शासक कुशल, पराक्रमी एवं नीति-निपुण हों। मगध इस संबंध में भाग्यशाली रहा कि उसे बिंबिसार, अजातशत्रु, शिशुनाग, महापद्मनंद जैसे प्रतिभाशाली शासक मिले। मगध के उत्थान में इन शासकों की महत्त्वाकांक्षी विजयों और दूरदर्शी नीतियों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इन साम्राज्यवादी शासकों ने अपनी वीरता एवं दूरदर्शिता से उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों का राज्यहित में समुचित उपयोग किया जिससे मगध को प्रथम साम्राज्य होने का गौरव प्राप्त हुआ।

मगध का आरंभिक इतिहास

मगध का उल्लेख पहली बार अथर्ववेद में मिलता है। मगध के प्राचीन इतिहास की रूपरेखा बौद्ध ग्रंथों, महाभारत तथा पुराणों में मिलती है। पुराणों के अनुसार मगध का सबसे प्राचीनतम् राजवंश बृहद्रथ वंश था। महाभारत तथा पुराणों के अनुसार जरासंध के पिता तथा चेदिराज वसु के पुत्र बृहद्रथ ने बृहद्रथ वंश की स्थापना की थी। भगवान् बुद्ध के पूर्व बृहद्रथ तथा जरासंध यहाँ के प्रतिष्ठित शासक थे। जरासंध ने काशी, कोशल, चेदि, मालवा, विदेह, अंग, वंग, कलिंग, कश्मीर और गांधार के राजाओं को पराजित किया। इसके बाद यहाँ प्रद्योत वंश का शासन स्थापित हुआ, जिसका अंत करके शिशुनाग ने अपने वंश की स्थापना की। शैशुनाग वंश के बाद नंद वंश ने शासन किया।

बौद्ध ग्रंथ शैशुनाग वंश का कोई उल्लेख नहीं करते और प्रद्योत तथा उसके वंश को अवंति से संबंधित करते हैं। इन ग्रंथों के अनुसार बिंबिसार तथा उसके उत्तराधिकारी शिशुनाग के पूर्वगामी थे और अंत में नंदों ने शासन किया था। इस प्रकार बौद्ध ग्रंथों का क्रम ही अधिक तर्कसंगत लगता है जिसके अनुसार मगध का प्रथम शासक बिंबिसार था, जो हर्यंक वंश का था। शिशुनाग वंश ने हर्यंक वंश के बाद शासन किया था।

हर्यंक वंश

मगध साम्राज्य की स्थापना का श्रेय बिंबिसार को है, किंतु बिंबिसार का संबंध किस कुल से था, स्पष्ट नहीं है। विभिन्न इतिहासकारों ने बिंबिसार को शैशुनाग, हर्यंक तथा नागकुल से संबंधित करने का प्रयास किया है। पुराणों में विवृत वंशावली के आधार पर स्मिथ आदि बिंबिसार को शैशुनाग वंश से संबंधित करते हैं। किंतु पुराणों के अन्य साक्ष्यों एवं बौद्ध ग्रंथों में प्राप्त उल्लेखों से यह स्थापना असत्य सिद्ध हो जाती है।

अश्वघोष के बुद्धचरित में बिंबिसार को हर्यंक कुल से संबंधित बताया गया है, किंतु भंडारकर बिंबिसार को नागकुल से संबंधित करते हैं। इनके अनुसार उस समय उत्तरी भारत में दो नागवंश थे। बिंबिसार आदि का संबंध बड़े नाग कुल से था, जिसका अंतिम शासक नागदास था। मगध के अधीनस्थ शासकों की नियुक्ति इसी नाग वंश से की जाती थी। शिशुनाग संभवतः इसी नाग वंश से संबंधित था। इस पितृघाती बड़े नाग वंश को समाप्त कर जब नागरिकों ने शिशुनाग को नियुक्त किया, तो इसे शिशुनाग वंश नाम दिया गया। भंडारकर के इस मत को माना जा सकता है कि बिंबिसार नागकुल से संबंधित था, किंतु उस समय दो नाग कुल साथ-साथ विद्यमान थे, इस मत से सहमत होना कठिन है।

भंडारकर की भाँति जसवन्त सिंह नेगी भी बिंबिसार को नागकुल से ही संबंधित करते हैं। प्रो. नेगी का सुझाव है कि अश्वघोष ने बिंबिसार को हर्यंक कुल का बताया है क्योंकि इस वंश के शासकों की मुद्राओं पर हरि अर्थात् नाग का चिन्ह उत्कीर्ण रहता था। इस प्रकार बिंबिसार को नाग कुल से संबंधित लगता है और हर्यंकवंश नाग वंश की ही कोई उपशाखा थी।

बिंबिसार

मगध साम्राज्य की महत्ता का वास्तविक संस्थापक हर्यंकवंशीय बिंबिसार था जिसने ई.पू. 544 में हर्यंक वंश की स्थापना की। कहा जाता है कि बिंबिसार प्रारंभ में लिच्छवियों का सेनापति था जो उस समय मगध पर शासन करते थे। किंतु बौद्ध ग्रंथों से पता चलता है कि बिंबिसार को पंद्रह वर्ष की आयु में उसके पिता ने मगध का राजा बनाया था। भारतीय साहित्य में इसके पिता का नाम भट्टिय, महापद्म, हेमजित, क्षेमजित अथवा क्षेत्रौजा आदि मिलता है। दीपवंस में बिंबिसार के पिता का नाम बोधिस् मिलता है जो राजगृह का शासक था। इससे लगता है कि बिंबिसार का पिता स्वयं शासक था, इसलिए बिंबिसार का लिच्छवियों का सेनापति होने का प्रश्न नहीं उठता। महावंस तथा दीपवंस से भी पता चलता है कि महापुण्यात्मा बिंबिसार को पंद्रह वर्ष की अवस्था में स्वयं उसके पिता ने अभिषिक्त किया तथा शासन के सोलहवें वर्ष में शास्ता ने उसको धर्मोपदेश दिया। इस प्रकार बिंबिसार मगध का परंपरागत उत्तराधिकारी था तथा यह राज्य उसके पिता के द्वारा ही प्राप्त हुआ था। जैन साहित्य में उसे 'श्रेणिक' कहा गया है, जो उसका उपनाम रहा होगा।

बिंबिसार एक महत्वाकांक्षी शासक था और उसके समय में ही राजनीतिक शक्ति के रूप में मगध का सर्वप्रथम उदय हुआ। उसने गिरिव्रज (राजगीर) को अपनी राजधानी बनाई और कूटनीतिक वैवाहिक संबंधों (कौशल, वैशाली एवं पंजाब) एवं विजय की नीति अपनाकर मगध साम्राज्य का विस्तार किया।

वैवाहिक संबंध

कूटनीतिज्ञ एवं दूरदर्शी शासक बिंबिसार ने सबसे पहले अपने समकालीन सभी प्रमुख राजवंशों में वैवाहिक संबंध स्थापित कर मगध राज्य के प्रभाव का विस्तार किया। वैवाहिक संबंधों के क्रम में उसने पहले लिच्छवि गणराज्य के शासक चेटक की पुत्री चेलना (छलना) के साथ विवाह कर मगध की उत्तरी सीमा को सुरक्षित किया। इस विवाह-संबंध से बिंबिसार ने न केवल वैशाली जैसे व्यापारिक क्षेत्र में अपने प्रभाव का विस्तार किया, अपितु इसकी दक्षिणी सीमा पर बहनेवाली गंगा नदी से होनेवाले जलीय व्यापार पर भी नियंत्रण कर लिया। विनयपिटक से ज्ञात होता है कि लिच्छवि लोग रात को मगध की राजधानी पर उत्तर से आक्रमण कर लूटपाट किया करते थे। इस वैवाहिक संबंध से ऐसी घटनाओं पर भी नियंत्रण स्थापित हुआ और राजधानी में शांति-व्यवस्था स्थापित हुई।

बिंबिसार की सर्वाधिक प्रिय महारानी कोशलाधिपति महाकोशल की कन्या एवं प्रसेनजित् की बहन महाकोशला (कोसलादेवी) थी। इस वैवाहिक संबंध के फलस्वरूप उसका न केवल कोशल से मैत्री-संबंध स्थापित हुआ, वरन् उसे एक लाख की आमदनीवाला काशी का समृद्ध गाँव भी दहेज में प्राप्त हुआ। इसके बाद उसने मद्र देश की राजकुमारी क्षेमा (खेमा) के साथ विवाह कर मद्रों का सहयोग और समर्थन प्राप्त किया। बिंबिसार की एक रानी वैदेही वासवी के विषय में भी सूचनाएँ मिलती हैं जिसने बिंबिसार की उस समय खाद्यादि से सेवा-सुश्रुषा की थी, जब वह अपने पुत्र अजातशत्रु द्वारा बंदी बना लिया गया था। महावग्ग से ज्ञात होता है कि बिंबिसार की पाँच सौ रानियाँ थीं। इससे लगता है कि इन वैवाहिक संबंधों अलावा उसने कुछ अन्य राज्यों से भी वैवाहिक संबंध स्थापित किया था।

बिंबिसार ने अवंति के शक्तिशाली राजा चंड प्रद्योत के साथ मित्रतापूर्ण संबंध स्थापित किया। स्रोतों से पता चलता है कि जब एक बार प्रद्योत पांडुरोग से पीड़ित थे, तो बिंबिसार ने अपने राजवैद्य जीवक को उसकी चिकित्सा-सुश्रुषा के लिए भेजा था। सिंधु (रोरुक) के शासक रुद्रायन तथा गंधार नरेश पुष्करसारिन् से भी उसका मैत्री-संबंध था। गंधार नरेश ने उसके पास एक दूत तथा पत्र भी भेजा था। इस प्रकार 'बिंबिसार के

कूटनीतिक तथा वैवाहिक संबंधों ने उसके द्वारा प्रारंभ की गई आक्रामक नीति में पर्याप्त सहायता प्रदान किया।'

अंग राज्य की विजय

विवाहों और मैत्री-संबंधों के द्वारा अपनी स्थिति मजबूत कर बिंबिसार ने सैनिक शक्ति का प्रयोग करते हुए पड़ोसी अंग राज्य को जीतकर मगध साम्राज्य में मिला लिया। मगध और अंग की शत्रुता बिंबिसार के पहले से ही चली आ रही थी। एक बार अंग नरेश ब्रह्मदत्त ने बिंबिसार के पिता को पराजित किया था। विधुरपंडित जातक से पता चलता है कि मगध की राजधानी राजगृह पर अंग का अधिकार था। महत्त्वाकांक्षी बिंबिसार ने अपने पिता की पराजय का बदला लेने और मगध का विस्तार करने के लिए अंग राज्य पर आक्रमण किया। अंग नरेश बह्मदत्त पराजित हुआ और मारा गया। बिंबिसार ने वहाँ अपने पुत्र अजातशत्रु को उपराजा (वायसराय) नियुक्त कर दिया। बिंबिसार की इस विजय ने मगध में उस विजय और विस्तार का दौर प्रारंभ किया, जो अशोक द्वारा कलिंग-विजय के बाद तलवार रख देने के साथ समाप्त हुआ। अब मगध का लगभग संपूर्ण बिहार पर अधिकार हो गयाा। बुद्धघोष के अनुसार बिंबिसार के राज्य में अस्सी हजार गाँव थे और उसका विस्तार लगभग तीन सौ लीग (नौ सौ मील) था।

कुशल प्रशासक

बिंबिसार एक कुशल प्रशासक भी था। शासन की सहायता के लिए कई प्रकार के अधिकारी नियुक्त किये जाते थे। बौद्ध साहित्य में उसके कुछ पदाधिकारियों के नाम मिलते हैं, जैसे- उपराजा, मांडलिक, सेनापति, महामात्रा, व्यावहारिक महामात्र, सब्बत्थक महामात्त तथा ग्रामभोजक आदि। सब्बत्थक महामात्त (सर्वाधक महामात्रा) सामान्य प्रशासन का प्रमुख पदाधिकारी होता था, जबकि वोहारिक महामात्त (व्यावहारिक महामात्र) सेना का प्रधान अधिकारी होता था।

भारतीय इतिहास में बिंबिसार पहला ऐसा शासक था जिसने स्थायी सेना रखी। प्रांतों में राजकुमार वायसराय नियुक्त किये जाते थे। वह अपने अधिकारियों और कर्मचारियों को उनके गुण-दोषों के आधार पर पुरस्कृत और दंडित करता था। वह एक महान् निर्माता भी था और परंपरा के अनुसार उसने राजगृह नामक नवीन नगर की स्थापना करवाई थी।

बिंबिसार के व्यक्तिगत धर्म के संबंध में स्पष्ट ज्ञात नहीं है। बौद्ध ग्रंथ उसे बौद्ध धर्म का अनुयायी बताते हैं, तो जैन ग्रंथ जैन धर्म का। उत्तराध्ययन सूत्र के अनुसार बिंबिसार अत्यंत विनय के साथ अपने परिवार और परिजनों के साथ महावीर स्वामी की शिष्यता स्वीकार कर जैन हो गया था। संभवत: जैन धर्म के प्रति बिंबिसार का झुकाव अपनी पत्नी चेलना के कारण हुआ था जो लिच्छिवि गण के प्रधान चेटक की बहन थी। लगता है कि बिंबिसार अधिक दिनों तक जैन मतानुयायी नहीं रहा और शीघ्र ही बुद्ध के प्रभाव से वह बौद्ध हो गया। विनयपिटक से पता चलता है कि बुद्ध से मिलने के बाद उसने बौद्ध धर्म को ग्रहण कर लिया तथा वेलुवन उद्यान बुद्ध तथा संघ के निमित्त दान कर दिया था। कहा जाता है कि बिंबिसार ने अपने राजवैद्य जीवक को भगवान् बुद्ध की उपचर्या में नियुक्त किया था और बौद्ध भिक्षुओं को नि:शुल्क जल-यात्रा की अनुमति दी थी। किंतु वह जैन और ब्राह्मण धर्म के प्रति भी सहिष्णु था। दीर्घनिकाय से पता चलता है कि बिंबिसार ने चंपा के प्रसिद्ध ब्राह्मण सोनदंड को वहाँ की संपूर्ण आमदनी दान में दे दिया था।

बिंबिसार का अंत : बिंबिसार ने करीब 52 वर्षों तक शासन किया, किंतु उसका अंत बहुत दु:खद हुआ। इस अंत का कारण उसका सर्वाधिक प्रिय पुत्र अजातशत्रु था जो महारानी कोशलदेवी से उत्पन्न हुआ था। बौद्ध और जैन ग्रंथों के अनुसार बुद्ध के विरोधी देवव्रत के उकसाने पर उसके महत्वाकांक्षी पुत्र अजातशत्रु ने उसे बंदी बनाकर कारागार में डाल दिया तथा उसका खाना-पीना बंद करवा दिया। कुछ दिन तक कोशलदेवी लुक-छिप कर बिंबिसार को खाना-पीना देती रहीं, किंतु जब अजातशत्रु को इसकी सूचना मिली तो उसने कोशलदेवी के आने-जाने पर भी प्रतिबंध लगा दिया। यही नहीं, अजातशत्रु ने बिंबिसार को और अधिक कष्ट देने के लिए उसके पैरों में घाव करवा दिया। इस प्रकार क्षुधा और घाव की पीड़ा से तड़प-तड़पकर

अंततः ई.पू. 492 में बिंबिसार के जीवन का अंत हो गया।

जैन ग्रंथों में बिंबिसार के दुःखद अंत की कहानी थोड़े परिवर्तन के साथ वर्णित है। इसके अनुसार बंदीगृह में बिंबिसार की देखभाल उसकी पत्नी चेलना करती थी। एक दिन उसने अजातशत्रु से बिंबिसार के पुत्र-प्रेम तथा व्रण सहित अंगूठा को पीने की बात बताई। इससे व्याकुल होकर अजातशत्रु बिंबिसार की बेड़ी तोड़ने के लिए हथौड़ा लेकर दौड़ा, किंतु बिंबिसार ने अपने मारे जाने के भय से विषपान करके आत्महत्या कर लिया। सत्यता जो भी हो, इतना निश्चित है कि बिंबिसार के अंतिम दिन कष्टदायक रहे और उसे न केवल अपने पुत्र के पक्ष में सिंहासन का त्याग करना पड़ा, अपितु प्राण भी गँवाना पड़ा।

अजातशत्रु

बिंबिसार के बाद उसका पुत्र 'कुणिक' अजातशत्रु मगध के सिंहासन पर बैठा। वह अपने पिता की भाँति साम्राज्यवादी था। सिंहासनारूढ़ होने पर वह अनेक प्रकार की समस्याओं और कठिनाइयों से घिर गया, किंतु अपने शक्ति और बुद्धिमानी से उसने न केवल सभी समस्याओं और कठिनाइयों का सम्मानजनक समाधान किया, अपितु सभी पर विजय प्राप्त कर अपने पिता के साम्राज्य-विस्तार की नीति को चरमोत्कर्ष तक पहुँचाया।

कोशल से संघष

अजातशत्रु के सिंहानारूढ़ होने के बाद मगध और कोशल में संघर्ष छिड़ गया। बौद्ध ग्रंथों से पता चलता है कि बिंबिसार की मृत्यु के बाद उसके दुःख से उसकी पत्नी कोशलादेवी (महाकोशला) की भी मृत्यु हो गई। कोशल देवी की मृत्यु के बाद कोशल नरेश प्रसेनजित् ने अजातशत्रु के खिलाफ संघर्ष छेड़ दिया और काशी पर पुनः अधिकार कर लिया। संयुक्तनिकाय में इस दीर्घकालीन संघर्ष का उल्लेख मिलता है। पहले प्रसेनजित् पराजित हुआ और उसे भागकर श्रावस्ती में शरण लेनी पड़ी, किंतु दूसरे युद्ध में अजातशत्रु पराजित हो गया और बंदी बना लिया गया। बाद में दोनों में संधि हो गई जिससे अजातशत्रु को न केवल काशी का प्रदेश वापस मिल गया, बल्कि प्रसेनजित् ने अपनी पुत्री वाजिरा का विवाह भी अजातशत्रु के साथ कर दिया।

गणराज्यों की विजय

मगध के आसपास के गणराज्य साम्राज्यवादी अजातशत्रु की आँख में किरकिरी की तरह चुभ रहे थे। वह इनकी स्वतंत्रता को मिटाने के लिए कृत-संकल्प था क्योंकि इनके रहते मगध का वास्तविक विस्तार संभव नहीं था। कोशल से निपटने के बाद अजातशत्रु ने वज्जि संघ की ओर अपनी विस्तारवादी दृष्टि डाली। वैशाली वज्जि संघ का प्रमुख था, जहाँ लिच्छवियों का शासन था। वज्जि संघ से मनमुटाव तो बिंबिसार के समय से ही चल रहा था क्योंकि दोनों ही गंगा नदी और उससे होनेवाले व्यापार पर नियंत्रण स्थापित करना चाहते थे, किंतु अजातशत्रु के समय में यह मनमुटाव संघर्ष में बदल गया। सुमंगलविलासिनी के अनुसार मगध-वज्जि संघर्ष का कारण गंगा के किनारे स्थित रत्नों की खान थी, जिस पर वज्जियों ने इस समझौते का उल्लंघन करके अधिकार कर लिया था।

जैन ग्रंथों के अनुसार इस संघर्ष का कारण बिंबिसार द्वारा अपनी पत्नी लिच्छवि राजकुमारी चेलना से उत्पन्न दो पुत्रों- हल्ल और बेहल्ल को दिया गया सेयनाग हाथी और अठारह लड़ियोंवाला रत्नों का एक हार था। जब राजा बनने के बाद अजातशत्रु ने इस हाथी और हार को वापस माँगा तो हल्ल और बेहल्ल ने इसे देने से इनकार कर दिया और वे अपने नाना चेटक के यहाँ भाग गये। फलतः अजातशत्रु ने लिच्छवियों के विरुद्ध युद्ध घोषित कर दिया। किंतु यह गौण कारण प्रतीत होता है। वस्तुतः संघर्ष का वास्तविक कारण गंगा नदी से होनेवाले पूर्वी भारत के व्यापार पर नियंत्रण स्थापित करने का था, हाथी और हार तो बहाना मात्र था।

अजातशत्रु लिच्छवियों की शक्ति और प्रतिष्ठा से परिचित था। उसे पता था कि लिच्छवियों को युद्ध में पराजित करना सरल कार्य नहीं है। जैन ग्रंथ निरयावलिसूत्र के अनुसार उस समय चेटक लिच्छविगण का प्रधान था। उसने नौ लिचछवियों, नौ मल्लों तथा काशी-कोशल के अठारह गणराज्यों को संगठित कर

एक सम्मिलित मोर्चा तैयार किया। भगवतीसूत्र में अजातशत्रु को इन सभी का विजेता कहा गया है। हेमचंद्र रायचौधरी का मानना है कि कोशल तथा वज्जि संघ के साथ संघर्ष अलग-अलग घटनाएँ नहीं थीं, अपितु वे मगध साम्राज्य की प्रभुसत्ता के विरुद्ध लड़े जानेवाले समान युद्ध का ही अंग थीं।

अजातशत्रु को पता था कि उसे वज्जियों से संघर्ष करना पड़ेगा, इसलिए वह इस संघर्ष की तैयारी में पहले से ही लग गया था। उसने वज्जियों के संभावित आक्रमण से अपने राज्य की सुरक्षा के लिए पाटलिपुत्र में एक सुदृढ़ दुर्ग का निर्माण करवाया था और भगवान् बुद्ध से इस संबंध में विचार-विमर्श भी किया था। बुद्ध ने उसे बताया था कि जब तक वज्जि संघ में एकता बनी रहेगी, उन्हें जीत पाना संभव नहीं है। अजातशत्रु ने अपने कूटनीतिज्ञ मंत्री वस्सकार (वर्षकार) को वज्जि संघ में फूट डलवाकर वज्जि सरदारों को आपस में लड़ा दिया और उपयुक्त अवसर देखकर एक बड़ी सेना के साथ वज्जि संघ पर आक्रमण कर दिया। जैन ग्रंथों से ज्ञात होता है कि इस युद्ध में अजातशत्रु ने पहली बार रथमूसल तथा महाशिलाकंटक जैसे दो गुप्त हथियारों का प्रयोग किया। रथमूसल आधुनिक टैंकों जैसा कोई अस्त्र था। महाशिलाकंटक भारी पत्थरों को फेंकनेवाला प्रक्षेपास्त्र था। भीषण युद्ध के बाद अजातशत्रु वज्जि संघ को विजित करने में सफल हो सका और लिच्छवि राज्य को मगध राज्य का अंग बना लिया। वज्जि संघ के बाद अजातशत्रु ने आक्रमण कर मल्ल संघ को भी पराजित किया और पूर्वी उत्तर प्रदेश के बड़े भू-भाग पर अधिकार कर लिया, जिससे मगध-साम्राज्य की सीमा काफी विस्तृत हो गई।

अवंति से संबंध

अवंति का राज्य अभी भी मगध साम्राज्य का प्रतिद्वंद्वी बना हुआ था। मज्झिमनिकाय से पता चलता है कि अवंति नरेश प्रद्योत के भय से ही अजातशत्रु ने अपनी राजधानी राजगृह का दुर्गीकरण करवाया था। किंतु अजातशत्रु और मगध के बीच किसी प्रत्यक्ष संघर्ष का उल्लेख नहीं मिलता। संभवतः दोनों को एक-दूसरे की शक्ति का अनुमान था। भास के स्वप्नवासवदत्ता के अनुसार अजातशत्रु की कन्या का विवाह वत्सराज उदयन के साथ हुआ था। इस वैवाहिक संबंध द्वारा अजातशत्रु ने वत्स को अपना मित्र बना लिया और अब उदयन मगध के विरुद्ध प्रद्योत की सहायता नहीं कर सकता था। कुछ इतिहासकारों का मानना है कि उदयन प्रद्योत और मगध के बीच कूटनीतिक सुलहकार बन गया।

धर्म एवं धार्मिक नीति

अजातशत्रु एक उदार धार्मिक सम्राट था। संभवतः वह प्रारंभ में जैनधर्मानुयायी था। अजातशत्रु के शासनकाल में गौतम बुद्ध तथा भगवान् महावीर को महापरिनिर्वाण प्राप्त हुआ था। भरहुत स्तूप की एक वेदिका के ऊपर अजातशत्रु बुद्ध की वंदना करता हुआ दिखाया गया है, जिससे लगता है कि वह कालांतर में बौद्ध हो गया था। उसने अपने शासनकाल के आठवें वर्ष में बुद्ध के महापरिनिर्वाण के बाद उनके अवशेषों पर राजगृह में स्तूप का निर्माण करवाया था और ई.पू. 483 (ई.पू. 467?) में राजगृह की सप्तपर्णि गुफा में प्रथम बौद्ध संगीति का आयोजन किया था। इस संगीति में बौद्ध भिक्षुओं ने बुद्धवचन को सुत्तपिटक और विनयपिटक के रूप में संकलित किया।

सिंहली अनुश्रुतियों के अनुसार अजातशत्रु ने लगभग 32 वर्षों तक शासन किया और ई.पू. 460 में अपने पुत्र उदायिन् द्वारा मार डाला गया।

उदायिन्

अजातशत्रु के बाद ई.पू. 460 में उदायिन् मगध का शासक बना। बौद्ध ग्रंथों में इसे पितृहंता कहा गया है, किंतु जैन ग्रंथ परिशिष्टपर्वन् में उसे पितृभक्त बताया गया है। जैन ग्रंथों में इसकी माता का नाम पद्मावती मिलता है। उदायिन् शासक बनने से पहले अपने पिता के शासनकाल में चंपा का उपराजा था। वह पिता की तरह ही वीर और विस्तारवादी नीति का समर्थक था जिसने मगध के विस्तृत क्षेत्र पर कुशलतापूर्वक शासन किया। इसने गंगा और सोन नदी के संगम पर पाटलिपुत्र नगर बसाया और अपनी राजधानी राजगृह से

पाटलिपुत्र स्थानांतरित किया।

मगध का प्रतिद्वंद्वी राज्य अवंति अभी भी शत्रुता की नीति का पालन कर रहा था, किंतु कोई निर्णायक युद्ध नहीं हो सका। कहा जाता है कि एक दिन जब वह किसी गुरु से उपदेश सुन रहा था, तो अवंति के किसी गुप्तचर द्वारा उदायिन् की छूरा भोंक कर हत्या कर दी गई।

उदायिन् जैन धर्मानुयायी था, यही कारण है कि जैन ग्रंथ उसकी प्रशंसा करते हैं। आवश्यकसूत्र से पता चलता है कि उसने एक जैन चैत्यगृह का निर्माण करवाया था।

उदायिन् के उत्तराधिरी

बौद्धग्रंथों के अनुसार उदायिन् के तीन पुत्र- अनिरुद्ध, मुंडक और नागदासक थे। इन तीनों पुत्रों को पितृहन्ता कहा गया है, जिन्होंने बारी-बारी से राज्य किया। अंतिम विलासी राजा नागदासक था जिसे पुराणों में 'दर्शक' कहा गया है। शासनतंत्र में शिथिलता के कारण जनता में व्यापक असंतोष फैल गया। राज्य की जनता ने विद्रोह कर उसके योग्य अमात्य शिशुनाग को राजा बना दिया। कुछ इतिहासकारों का मानना है कि शिशुनाग अंतिम हर्यंक शासक नागदशक का प्रधान सेनापति था और इस प्रकार उसका सेना के ऊपर पूर्ण नियंत्रण था। उसने अवंति के ऊपर आक्रमण नागदशक के शासनकाल में ही किया होगा और इसके तत्काल बाद नागदशक को पदच्युत् कर जनता ने उसे मगध का सिंहासन सौंप दिया होगा। इस प्रकार ई.पू. 412 में हर्यंक वंश का अंत हो गया और शिशुनाग वंश की स्थापना हुई।

शैशुनाग वंश

शिशुनाग ई.पू. 412 में मगध की गद्दी पर बैठा जो संभवत: नाग वंश से संबंधित था। महावंसटीका के अनुसार वह लिच्छवि राजा की वेश्या पत्नी से उत्पन्न पुत्र था। पुराणों के अनुसार वह क्षत्रिय था। इसने सर्वप्रथम मगध के प्रबल प्रतिद्वंद्वी राज्य अवंति को मिलाया। पुराणों में कहा गया है कि 'पाँच प्रद्योत पुत्र 138 वर्षों तक शासन करेंगे। उन सभी को मार कर शिशुनाग राजा होगा।'

अवंति की विजय शिशुनाग की महान् सफलता थी। उसने मगध साम्राज्य का विस्तार कर बंगाल की सीमा से मालवा तक के विशाल भू-भाग पर अधिकार कर लिया। अवंति विजय के परिणामस्वरूप वत्स पर भी उसका अधिकार हो गया क्योंकि वत्स अवंति के अधीन था। वत्स और अवंति के मगध में विलय से पाटलिपुत्र को पश्चिमी देशों से व्यापार के लिए रास्ता खुल गया। भंडारकर का अनुमान है कि इस समय कोशल भी मगध की अधीनता में आ गया था।

इस प्रकार शिशुनाग एक शक्तिशाली शासक था जिसने उत्तर भारत के सभी प्रमुख राजतंत्रों पर अपना अधिकार कर लिया। उसने वज्जियों पर नियंत्रण स्थापित करने के लिए गिरिव्रज के अलावा वैशाली नगर को राजधानी के रूप में विकसित किया जो कालांतर में उसकी प्रमुख राजधानी बन गई। ई.पू. 394 में इसकी मृत्यु हो गई ।

कालाशोक (काकवर्ण)

महावंस के अनुसार कालाशोक शिशुनाग का पुत्र था जो शिशुनाग के ई.पू. 394 में मृत्यु के बाद मगध का शासक बना। पुराणों में इसे काकवर्ण कहा गया है। कालाशोक ने अपनी राजधानी को पाटलिपुत्र स्थानांतरित कर दिया था।

कालाशोक के शासनकाल में ही वैशाली में बौद्ध धर्म की द्वितीय संगीति का आयोजन हुआ। इसमें बौद्ध संघ में विभेद उत्पन्न हो गया और वह स्पष्टतया दो संप्रदायों में बँट गया- स्थविर तथा महासांघिक। परंपरागत नियमों में आस्था रखने वाले स्थविर कहलाये और जिन लागों ने बौद्ध संघ में कुछ नये नियमों को समाविष्ट कर लिया, वे महासांघिक कहे गये। कालाशोक ने 28 वर्षों तक शासन किया। बाणभट्टकृत हर्षचरित के अनुसार काकवर्ण की राजधानी पाटलिपुत्र में घूमते समय किसी व्यक्ति ने चाकू मारकर हत्या कर दी थी। यह राजहंता नंद वंश का संस्थापक महापद्मनंद था। कालाशोक की हत्या ई.पू. 366 में हुई।

महाबोधिवंश के अनुसार कालाशोक के दस पुत्र थे, जिन्होंने मगध पर सम्मिलित रूप से 22 वर्षों तक शासन किया। इनमें नंदिवर्धन् का नाम सबसे महत्त्वपूर्ण है। पुराणों के अनुसार नंदिवर्धन् शैशुनाग वंश का अंतिम महत्त्वपूर्ण राजा था जिसका उत्तराधिकारी महानंदिन् हुआ। इस प्रकार नंदिवर्धन् या महानंदिन् शैशुनाग वंश का अंतिम शासक था। लगभग ई.पू. 344 में शिशुनाग वंश का अंत हो गया और नंद वंश का उदय हुआ।

नंद वंश

नंद वंश प्राचीन भारत का महत्त्वपूर्ण वंश था जिसने पाँचवीं-चौथी शताब्दी ई.पू. में उत्तरी भारत के विशाल भाग पर शासन किया। नंदों के इतिहास की जानकारी के अनेक छिटफुट विवरण पुराणों, जैन और बौद्ध ग्रंथों एवं कुछ यूनानी इतिहासकारों के विवरणों में प्राप्त होते हैं। यद्यपि सभी स्रोतों में कोई पूर्ण या ऐकमत्य नहीं है, तथापि इतना निश्चित है कि नंद शासकों की अधिकांश प्रवृतियां भारतीय शासन परंपरा के विपरीत थीं। पुराणों में इसे महापद्म तथा महाबोधिवंस में उग्रसेन कहा गया है। पुराण महापद्मनंद को शैशुनाग वंश के अंतिम राजा महानंदिन् की शूद्रा स्त्री के गर्भ से उत्पन्न (शूद्रागर्भोद्भव) पुत्र बताते हैं। विष्णु पुराण में कहा गया है कि महानंदी की शूद्रा से उत्पन्न महापद्म अत्यंत लोभी तथा बलवान एवं दूसरे परशुराम के समान सभी क्षत्रियों का विनाश करनेवाला होगा। जैनग्रंथ परिशिष्टपर्वन् में भी उसे नापित पिता और वेश्या माता का पुत्र कहा गया है। आवश्यकसूत्र के अनुसार वह नापित दास (नाई का दास) था। महावंसटीका में नंदों को अज्ञात कुल का बताया गया है, जो डाकुओं के गिरोह का मुखिया था। उसने उचित अवसर पाकर मगध की सत्ता पर अधिकार कर लिया।

यूनानी लेखक कर्टियस लिखता है कि सिकंदर के समय वर्तमान नंद राजा का पिता वास्तव में अपनी स्वयं की कमाई से अपनी क्षुधा न शांत कर सकनेवाला एक नाई था, जिसने अपने रूप-सौंदर्य से शासन करने वाले राजा की रानी का प्रेम प्राप्त कर राजा की भी निकटता प्राप्त कर ली। फिर विश्वासपूर्ण ढंग से उसने राजा का वध कर डाला, उसके बच्चों की देख-रेख के बहाने राज्य को हड़प लिया, फिर उन राजकुमारों को मार डाला तथा वर्तमान राजा को पैदा किया। इससे कुछ भिन्न विवरण डियोडोरस का है जिसके अनुसार धननंद का नाई पिता अपनी सुंदरता के कारण रानी का प्रेमपात्र बन गया और रानी ने अपने वृद्ध पति की हत्या कर दी तथा अपने प्रेमी को राजा बनाया। यूनानी लेखकों के वर्णनों से स्पष्ट होता है कि वह वर्तमान राजा अग्रमस् अथवा जंड्रमस् (चंद्रमस?) था, जिसकी पहचान धननंद से की गई है। उसका पिता महापद्मनंद था, जो कर्टियस के कथनानुसार नाई जाति का था। महाबोधिवंस में महापद्म का नाम उग्रसेन मिलता है और उसका पुत्र धननंद सिकंदर का समकालीन था। इन अनेक संदर्भों से यह स्पष्ट हो जाता है कि नंद वंश के राजा नाई जाति के शूद्र थे।

महापद्मनंद

महापद्मनंद नंद वंश का प्रथम और सर्वाधिक शक्तिशाली शासक था। पुराण उसकी गिनती शैशुनाग वंश में ही करते हैं, किंतु बौद्ध और जैन अनुश्रुतियों में उसे एक नये वंश नंद वंश का प्रारंभकर्ता बताया गया है। पुराणों के कलियुगराजवृत्तांत खंड से पता चलता है कि वह अतिबली, अतिलोभी, महाक्षत्रांतक और द्वितीय परशुराम के समान था जो महापद्म, एकराट, सर्वक्षत्रांतक आदि उपाधियों से विभूषित था। स्पष्ट है कि बहुत बड़ी सेनावाले (उग्रसेन) उस राजा ने अपने समकालिक अनेक क्षत्रिय राजवंशों का समूल नाशकर अपने बल का प्रदर्शन किया और उनसे कठोरतापूर्वक धन भी वसूल किया।

महापद्मनंद की विजयें

यह आश्चर्य नहीं है कि उस अपार धन और सैन्य-शक्ति से महापद्मनंद ने हिमालय और नर्मदा के बीच के सारे प्रदेशों को जीतने का उपक्रम किया। उसके जीते हुए प्रदेशों में इक्ष्वाकु (अयोध्या और श्रावस्ती के आसपास का कोसल राज्य), पांचाल (उत्तर-पश्चिमी उत्तर प्रदेश में बरेली और रामपुर के पार्श्ववर्ती क्षेत्र), कौरव्य (इंद्रप्रस्थ, दिल्ली, कुरुक्षेत्र और थानेश्वर), काशी (वाराणसी के पार्श्ववर्ती क्षेत्र), हैहय (दक्षिणापथ

में नर्मदातीर के क्षेत्र), अश्मक (गोदावरी घाटी में पौदन्य अथवा पोतन के आसपास के क्षेत्र), वीतिहोत्र (दक्षिणापथ में अश्मकों और हैहयों के क्षेत्रों में लगे हुए प्रदेश), कलिंग (उड़ीसा में वैतरणी और वराह नदी के बीच कोक्षेत्र), शूरसेन (मथुरा के आसपास का क्षेत्र), मिथिला (बिहार में मुजफ्फरपुर और दरभंगा जिलों के बीचवाले क्षेत्र तथा नेपाल की तराई का कुछ भाग) तथा अन्य अनेक राज्य शामिल थे। भारतीय इतिहास में पहली बार एक ऐसे साम्राज्य की स्थापना हुई जिसमें हिमालय और विंध्याचल के बीच कहीं भी उसके शासन का उल्लंघन नहीं हो सकता था। इस प्रकार उसने सारी पृथ्वी पर एकराट् होकर राज्य किया।

महापद्मनंद की इन पुराणोक्त विजयों की प्रमाणिकता कथासरित्सागर, खारवेल के हाथीगुम्फा अभिलेख तथा मैसूर से प्राप्त कुछ अन्य अभिलेखों के कुछ बिखरे हुए उल्लेखों से भी सिद्ध होती है। हाथीगुम्फा लेख से महापद्मनंद की कलिंग-विजय के संबंध में पता चलता है कि नंदराज कलिंग से जिन् की प्रतिमा को मगध उठा लाया था और कलिंग में एक नहर का निर्माण करवाया था। मैसूर के बारहवीं शताब्दी के लेखों से भी नंदों द्वारा कुंतल जीते जाने का उल्लेख मिलता है। यूनानी लेखकों के विवरणों से भी ज्ञात होता है कि अग्रमीज का राज्य पश्चिम में व्यास नदी तक विस्तृत था। निश्चित रूप से इस विस्तृत भूभाग को महापद्मनंद ने ही विजित किया था क्योंकि परवर्ती नंद शासकों की किसी महत्त्वपूर्ण विजय का उल्लेख नहीं मिलता है।

पुराणों में महापद्मनंद के आठ पुत्र उत्तराधिकारी बताये गये हैं, किंतु महाबोधिवंस जैसे बौद्ध ग्रंथों में वे उसके भाई बताये गये हैं। महापद्मनंद के उत्तराधिकारी थे- उग्रसेन, पंडुक, पांडुगति, भूतपाल, राष्ट्रपाल, गोविषाणक, दशसिद्धक, कैवर्त, धनानंद। इसमें कोई विवाद नहीं है कि सभी मिलाकर संख्या की दृष्टि से नवनंद कहे जाते थे। पुराणों में उन सबका राज्यकाल 100 वर्षों तक बताया गया है- 88 वर्षों तक महापद्मनंद का और 12 वर्षों तक उसके पुत्रों का। किंतु एक ही व्यक्ति 88 वर्षों तक राज्य करता रहे और उसके बाद के क्रमागत 8 राजा केवल 12 वर्षों तक ही राज्य करें, यह संभव नहीं है। सिंहली अनुश्रुतियों में नवनंदों का राज्यकाल 40 वर्षों का बताया गया है और उसे सत्य माना जा सकता है। इसके अनुसार नवनंदों ने लगभग ई. पू. 364 से ई.पू. 324 तक शासन किया।

धननंद

नंद वंश का अंतिम शासक धननंद अर्थात् अग्रमस् (औग्रसैन्य अर्थात् उग्रसेन का पुत्र) सिकंदर के आक्रमण के समय मगध (प्रसाई-प्राची) का सम्राट् था, जिसकी विशाल और शक्तिशाली सेना के भय से यूनानी सिपाहियों ने पोरस से हुए युद्ध के बाद आगे बढ़ने से इनकार कर दिया। यूनानी लेखकों के अनुसार उसके पास असीम सेना और अतुल संपत्ति थी। कर्टियस लिखता है कि नंदों की सेना में दो लाख पैदल, बीस हजार घुड़सवार, दो हजार रथ और तीन हजार हाथी थे। उसका सेनापति भद्दशाल था और उसका साम्राज्य उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में गोदावरी नदी तक तथा पश्चिम में सिंधु नदी से लेकर पूरब में मगध तक फैला हुआ था। पूर्वी दक्षिणापथ में कलिंग भी उसके साम्राज्य में सम्मिलित था।

महावंसटीका से ज्ञात होता है कि अंतिम नंद धनानंद एक लालची और धन-संग्रही शासक था। वह कठोर लोभी और कृपण स्वभाव का व्यक्ति था। संभवतः इस लोभी प्रकृति के कारण ही उसे धननंद कहा गया है। तमिल, संस्कृत तथा सिंहली ग्रंथों से भी उसकी अतुल संपत्ति की सूचना मिलती है। कथासरित्सागर के अनुसार नंदों के पास ग्यारह करोड़ स्वर्णमुद्राएँ थीं। कहा गया है कि अपनी असीम शक्ति और संपत्ति के बावजूद धननंद जनता का विश्वास नहीं जीत सका और जनता नंदों के विरुद्ध हो गई थी।

प्लूटार्क कहता है कि चंद्रगुप्त (सैंड्रोकोट्टस) मौर्य ने सिकंदर से मिलकर उसकी नीच-कुलोत्पत्ति और जनता में अप्रियता की बात कही थी। संभव है, धननंद को उखाड़ फेंकने के लिए चंद्रगुप्त ने उस विदेशी आक्रमणकारी के उपयोग का भी प्रयत्न किया हो। मुद्राराक्षस से पता चलता है कि धननंद द्वारा अपमानित ब्राह्मण चाणक्य ने अपनी कूटनीति से क्षत्रिय चंद्रगुप्त मौर्य के सहयोग से धननंद को पराजित कर चंद्रगुप्त मौर्य को मगध का शासक बनाया। संभवतः ई.पू. 324 में चंद्रगुप्त और चाणक्य ने एक भीषण युद्ध में धननंद

की हत्याकर उसके वंश का अंत कर दिया।

नंद शासकों का महत्त्व

नंद राजाओं का शासन भारतीय इतिहास के पृष्ठों में एक सामाजिक क्रांति जैसा है। यह भारत के सामाजिक-राजनैतिक आंदोलन कोएक महत्त्वपूर्ण पहलू है। सामाजिक दृष्टि से यह निम्न वर्ग के उत्कर्ष का प्रतीक है। नंद वंश के शासकों को उनकी शूद्र कुलोत्पत्ति के कारण वर्णव्यवस्थापरक भारतीय समाज में अप्रिय घोषित किया गया है, इसमें कोई संदेह नहीं है। इतिहासकारों को नंदों की प्रवृत्तियाँ परंपरा-विरुद्ध दिखाई पड़ती हैं, जबकि नंद पहले ऐसे शासक थे जिन्होंने भारतवर्ष के राजनीतिक एकीकरण की प्रक्रिया को अत्यंत जोरदार रूप में आगे बढ़ाया। नंदों का राजनैतिक महत्त्व इस तथ्य में निहित है कि इस वंश के शासकों ने उत्तर भारत में सर्वप्रथम एकछत्र शासन की स्थापना की। महापद्मनंद पहला ऐसा शासक था जिसने गंगा घाटी की सीमाओं का अतिक्रमण कर विंध्य पर्वत के दक्षिण तक अपनी विजय-पताका फहराई। नंदों को इस बात का श्रेय दिया जाना चाहिए कि उन्होंने एक ऐसी सेना तैयार की थी जिसका उपयोग परवर्ती मगध राजाओं ने विदेशी आक्रमणकारियों को रोकने तथा भारतीय सीमा में अपने राज्य का विस्तार करने में किया।

नंद राजाओं के समय में मगध राजनैतिक दृष्टि से अत्यंत शक्तिशाली तथा आर्थिक दृष्टि से समृद्धिशाली साम्राज्य बन गया। नंदों की अतुल संपत्ति को देखते हुए यह अनुमान करना स्वाभाविक है कि हिमालय पार के देशों के साथ उनका व्यापारिक संबंध था। साइबेरिया की ओर से वे स्वर्ण मँगाते थे। जेनोफोन की साइरोपेडिया से पता चलता है कि भारत का एक शक्तिशाली राजा पश्चिमी एशियाई देशों के झगडों की मध्यस्थता करने की इच्छा रखता था। इस भारतीय शासक को अत्यंत धनी व्यक्ति कहा गया है जिसका संकेत नंद वंश के शासक धननंद की ओर ही है। सातवीं शती के चीनी यात्री ह्वेनसांग ने भी नंदों के अतुल संपत्ति की कहानी सुनी थी। उसके अनुसार पाटिलपुत्र में पाँच स्तूप थे जो नंद राजा के सात बहुमूल्य पदार्थों द्वारा संचित कोषागारों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

मगध की आर्थिक समृद्धि ने राजधानी पाटलिपुत्र को शिक्षा एवं साहित्य का प्रमुख केंद्र बना दिया। व्याकरण के आचार्य पाणिनि महापद्मनंद के मित्र थे और उन्होंने पाटलिपुत्र में रहकर शिक्षा पाई थी। वर्ष, उपवर्ष, वररुचि, कात्यायन (राक्षस) जैसे विद्वान् भी नंदकाल में ही उत्पन्न हुए थे।

नंद शासक जैनमत के पोषक थे तथा उन्होने अपने शासन में कई जैन मंत्रियों को नियुक्त किया था। इनमें प्रथम मंत्री कल्पक था जिसकी सहायता से महापद्मनंद ने समस्त क्षत्रियों का विनाश किया था। शकटाल तथा स्थूलभद्र धननंद के जैन मतावलंबी अमात्य थे। मुद्राराक्षस से भी नंदों का जैन मतानुयायी होना सूचित होता है।

इस प्रकार बुद्धकालीन राजतंत्रों में मगध ही अंततोगत्वा सर्वाधिक शक्ति-संपन्न साम्राज्य के रूप में उभर कर सामने आया। नंद राजाओं के काल में मगध साम्राज्य राजनैतिक तथा सांस्कृतिक दोनों ही दृष्टियों से प्रगति के पथ पर अग्रसर हुआ।